

दहयाभाई छगगनभाई ठक्कर

बनाम

गुजरात राज्य

(न्यायामूर्ति के. सुब्बा राव, न्यायामूर्ति के. सी. दास गुप्ता और न्यायामूर्ति
रघुबर दयाल)

आपराधिक कानून - दोष पर सबूत का भार - सामान्य और विशेष
भार, यदि संघर्ष में है - पागलपन की याचिका - सबूत का तरीका - धारा
154 साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत प्रश्न - न्यायालय कब अनुमति दे
सकती है - भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का अधिनियम 45) की
धारा 80,84,299 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की
धारा 105,137,154.

अपीलार्थी पर अपनी पत्नी की हत्या का आरोप लगाया गया था।
सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक बचाव पक्ष स्थापित किया गया था कि
अपीलार्थी घटना के समय पागल था और अपने कार्य की प्रकृति को
समझने में सक्षम नहीं था। सत्र न्यायाधीश ने पागलपन की याचिका को
अस्वीकार कर दिया और धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत उसे दोषी
ठहराया। अपील पर उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि की पुष्टि की गई।

अभिनिर्णित-(i) अपराध को उचित संदेह से परे साबित करने के लिए सामान्य भार के बीच कोई संघर्ष नहीं है, जो हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है और जो कभी नहीं बदलता है, और आरोपी द्वारा उठाई गई पागलपन की याचिका को साबित करने का विशेष भार आरोपी पर होता है।

(ii) पागलपन की दलील के संदर्भ में सबूत के भार के सिद्धांत को निम्नलिखित प्रस्तावों में कहा जा सकता है:

(1). अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे यह साबित करना होगा कि अभियुक्त ने दुषित मस्तिष्क के साथ अपराध किया था और यह साबित करने का भार हमेशा मुकदमे की शुरुआत से अंत तक अभियोजन पक्ष पर ही निर्भर करता है।

(2) धारा 84 भारतीय दण्ड प्रक्रिया के अंतर्गत की गई उपधारणा कि जब अभियुक्त द्वारा अपराध कारित किया गया अभियुक्त पागल नहीं था, यह एक खंडन योग्य उपधारणा है। अभियुक्त इस उपधारणा को न्यायालय के समक्ष सभी प्रासंगिक साक्ष्य - मौखिक, दस्तावेजी या परिस्थितिजन्य पेश कर खंडन कर सकता है, लेकिन उस पर सबूत का भार उससे अधिक नहीं होगा जो दीवानी कार्यवाही के लिए एक पक्ष पर निर्भर करता है।

(3) भले ही अभियुक्त निर्णायक रूप से यह स्थापित करने में सक्षम नहीं था कि उस समय पागल था जब उसने अपराध किया, अभियुक्त द्वारा या अभियोजन पक्ष द्वारा न्यायालय के समक्ष सबूत प्रस्तुत किया

जा सकता है जिससे न्यायालय के मन में अपराध के एक या अधिक अव्यव दुषित मस्तिष्क के शामिल होने संबंधी उचित संदेह उत्पन्न हो सके और उस मामले में न्यायालय अभियुक्त को इस आधार पर बरी करने का हकदार होगा कि अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य को साबित करने का सामान्य भार मुक्त नहीं किया गया।

के. एम. नानावती बनाम महाराष्ट्र राज्य, [1962] पूरक 1 एस.सी.आर. 567 पालना की गई।

रामहितराम बनाम राज्य, ए.आई.आर. 1956 नाग. 187, अस्वीकृत

कमला सिंह बनाम राज्य, ए.आई.आर. 1955 पैट. 209, स्वीकृत।

एच. एम. एडवोकेट बनाम फ्रेजर, (1878) 4 कूपर 70, संदर्भित

(3) न्यायालय साक्षी को बुलाने वाले व्यक्ति को गवाह की जाँच के किसी भी स्तर पर ऐसे प्रश्न पूछने की अनुमति दे सकता है जिनसे जिरह में पुछा जा सकता है, बशर्ते कि वह अभियुक्त को उन उत्तरों पर प्रतिपरिक्षण करने के अवसर का ध्यान रखे - जो उत्तर मुख्य परिक्षण में जगह नहीं पाते हैं।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 में एक गवाह की परीक्षा के केवल तीन चरण दिए गए हैं, और धारा 154 साक्ष्य अधिनियम में एक गवाह को बुलाने वाले पक्ष को सवाल रखने की अनुमति देना इन दोनों की कोई प्रासंगिकता नहीं है। यह धारा 154 साक्ष्य अधिनियम द्वारा शासित

होता है जो न्यायालय को एक ऐसे व्यक्ति जो एक गवाह को बुलाता है उसको कोई भी सवाल पूछने के लिए अनुमति देने की विवेकाधीन शक्ति प्रदान करता है जो प्रतिकूल पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा में रखे जा सकते हैं।

तहसीलदार सिंह बनाम द स्टेट ऑफ यू.पी., [1959] पुरक 2 एस.सी.आर. अनुसरण किया गया।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील सं. 58/1962

गुजरात उच्च न्यायालय की अपील संख्या 656/1960 दिनांक 27 जून, 1961 में दिये गये आदेश और निर्णय के विरुद्ध की गई विशेष अनुमति द्वारा अपील

बी. के. बनर्जी, अपीलार्थी के लिए।

डी. आर. प्रेम, आर. एच. डेबर और बी. आर. जी. के. आचार प्रतिवादी की ओर से।

19 मार्च, 1964 को न्यायालय का निर्णय न्यायामूर्ति सुब्बा राव द्वारा सुनाया गया था - यह अपील धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत एक अपराध के लिए पागलपन की रक्षा का सवाल उठाती है

अपीलार्थी मृतक कलावती का पति था। उनकी शादी अपीलकर्ता से वर्ष 1958 में हुई थी। 9 अप्रैल, 1959 की रात को, हमेशा की तरह, अपीलकर्ता और उनकी पत्नी अपने शयनकक्ष में सोए थे और उस कमरे

की ओर जाने वाले दरवाजे अंदर से बंद थे। अगले दिन सुबह करीब 3 या 3.30 बजे कलावती चिल्लाई कि उसे मारा जा रहा है। पड़ोसी उक्त कमरे के सामने एकत्र हुए और आरोपी को दरवाजा खोलने के लिए बोला, जब दरवाजा खोला गया तो उन्होंने कलावती को मृत पाया और उसके शरीर पर कई घाव थे। अभियुक्त को हत्या के आरोप में सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय के समक्ष पेश किया गया। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कैरा के समक्ष एक बचाव दलील स्थापित की गई कि जब घटना हुई थी तब आरोपी पागल था और वह अपने कृत्य की प्रकृति को समझने में सक्षम नहीं था।

विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने उनके सामने रखे गए सभी साक्ष्यों पर विचार किया, और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अभियुक्त उन्हें संतुष्ट करने में असफल रहा कि जब उसने अपनी पत्नी की हत्या की तो वह कृत्य की प्रकृति और वह क्या कर रहा था, यह जानने में सक्षम नहीं था कि जो वह कर रहा था वह गलत था या कानून के विपरीत था। उसकी पागलपन की दलील को खारिज करते हुए, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने उसे धारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया व उसे आजीवन कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। अपील पर, उच्च न्यायालय उपरोक्त निष्कर्ष से सहमत हुआ हालांकि अलग-अलग

कारणों से अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की, इसलिए हस्तगत अपील पेश की गई।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विश्वास करते हुए उच्च न्यायालय को यह मानना चाहिए था कि अभियुक्त ने यह साबित करने के अपने ऊपर डाले गए भार से मुक्ति पा ली है कि जिस समय उसने अपनी पत्नी की हत्या की, वह उसकी प्रकृति को जानने में असमर्थ था। उसका कार्य या वह जो कर रहा था वह या तो गलत था या कानून के विपरीत था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि भले ही वह उस तथ्य को निर्णायक रूप से स्थापित करने में विफल रहे हों, लेकिन प्रस्तुत किए गए सबूत ऐसे थे जो न्यायाधीश के मन में अपराध के अवयवों में से एक अर्थात् आपराधिक आशय और इसलिए अपराध के संबंध में उचित संदेह पैदा करते थे। अदालत को उसे इस कारण से बरी कर देना चाहिए था कि अभियोजन पक्ष ने मामले को उचित संदेह से परे साबित नहीं किया था।

इससे पहले कि हम मामले के तथ्यों और उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर ध्यान दें, पागलपन की दलील के कानून के प्रासंगिक पहलुओं पर ध्यान देना सुविधाजनक होगा। आरंभ में आइए हम निर्णय किए गए मामलों के संदर्भ के बिना भौतिक प्रावधानों पर विचार करें। उक्त प्रावधान हैं:

भारतीय दंड संहिता

धारा 299 - जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कार्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है। गैर इरादतन हत्या का अपराध करता है।

धारा 84 - कोई भी बात ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया अपराध नहीं है जो ऐसा करते समय मानसिक अस्वस्थता के कारण उस कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ हो, या कि वह जो कर रहा है वह या तो गलत है या कानून के विपरीत है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम

धारा 105 - जबकि कोई व्यक्ति किसी अपराध का अभियुक्त है, तब उन परिस्थितियों के अस्तित्व को साबित करने का भार, जो उस मामले को भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के साधारण अपवादों में से किसी के अन्तर्गत या उसी संहिता के किसी अन्य भाग में, या उस अपराध की परिभाषा करने वाली किसी विधि में, अन्तर्विष्ट किसी विशेष अपवाद या परन्तुक के अन्तर्गत कर देती है, उस व्यक्ति पर है और न्यायालय ऐसी परिस्थितियों के अभाव की उपधारणा करेगा।

धारा 4 - “उपधारणा कर सकेगा” - जहाँ कहीं इस अधिनियम द्वारा यह उपबन्धित है कि न्यायालय किसी भी तथ्य की उपधारणा कर सकेगा, वहाँ न्यायालय या तो ऐसे तथ्य को साबित हुआ मान सकेगा, यदि और जब तक वह नासाबित नहीं किया जाता है, या उसके सबूत की मांग कर सकेगा।

“साबित” - कोई तथ्य साबित हुआ कहा जाता है, जब न्यायालय अपने समक्ष के विषयों पर विचार करने के पश्चात् या तो यह विश्वास करे कि उस तथ्य का अस्तित्व है या उसके अस्तित्व को इतना अधिसम्भाव्य प्रजावान व्यक्ति को इस अनुमान पर कार्य करना चाहिए कि उस तथ्य का अस्तित्व है।

“नासाबित” - कोई तथ्य नासाबित हुआ कहा जाता है, जब न्यायालय अपने समक्ष विषयों पर विचार करने के पश्चात् या तो यह विश्वास करे कि उसका अस्तित्व नहीं है, या उसके अस्तित्व को इतना अधिसम्भाव्य समझे कि उस विशिष्ट मामले की परिस्थितियों किसी प्रजावान व्यक्ति को इस अनुमान पर कार्य करना चाहिए कि उस तथ्य का अस्तित्व नहीं है।

धारा 101. सबूत का भार- जो कोई न्यायालय से ये चाहता है कि वह ऐसे किसी विधिक अधिकार या दायित्व के बारे में निर्णय दे, जो उन तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर है, जिन्हें वह प्राख्यात करता है, उसे साबित करना होगा कि उन तथ्यों का अस्तित्व है।

जब कोई व्यक्ति किसी तथ्य का अस्तित्व साबित करने के लिए आबद्ध है तब यह कहा जाता है कि उस व्यक्ति पर सबूत का भार है।

यह आपराधिक न्यायशास्त्र का एक बुनियादी सिद्धांत है कि एक आरोपी को निर्दोष माना जाता है और इसलिए, आरोपी के अपराध को उचित संदेह से परे साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर होता है। इसलिए, हत्या के मामले में अभियोजन को उचित संदेह से परे साबित करेगा कि आरोपी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 299 में वर्णित अपेक्षित आशय से मृत्यु कारित की है। यह सामान्य भार कभी नहीं बदलता है और यह हमेशा अभियोजन पक्ष पर रहता है। लेकिन, जैसा कि धारा 84 भारतीय दंड संहिता में यह प्रावधान है कि कोई भी चीज़ अपराध नहीं है यदि उस कार्य को करने के समय आरोपी मानसिक अस्वस्थता के कारण अपने कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ था या वह जो कर रहा था वह या तो गलत था या कानून के विपरीत था। यह एक अपवाद है, धारा 105 साक्ष्य अधिनियम के तहत, मामले को उक्त अपवाद के अंतर्गत लाने वाली परिस्थितियों के अस्तित्व को साबित करने का भार अभियुक्त पर है; और अदालत ऐसी परिस्थितियों की अनुपस्थिति मानेगी। धारा 105 साक्ष्य अधिनियम व धारा 4 में परिभाषित "उपधारणा करेगा" के ध्यान में रखे तो अदालत ऐसी परिस्थितियों की अनुपस्थिति को साबित मानेगी, जब तक कि उसके समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद, यह विश्वास न हो कि

उक्त परिस्थितियाँ अस्तित्व में थीं या उसके अस्तित्व को इतना अधिसम्भाव्य प्रजावान व्यक्ति को इस अनुमान पर कार्य करना चाहिए कि उस तथ्य का अस्तित्व है। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त को अदालत के समक्ष पर्याप्त सामग्री रखकर इस धारणा का खंडन करना होगा कि ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद नहीं थीं, जिससे वह उक्त परिस्थितियों के अस्तित्व को इतना संभावित मान सके कि एक विवेकशील व्यक्ति उन पर कार्रवाई कर सके। अभियुक्त को "विवेकशील व्यक्ति" के मानक पर खरा उतरना होगा। यदि न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री जैसे, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य, अनुमान, स्वीकारोक्ति या अभियोजन साक्ष्य, यदि "विवेकपूर्ण व्यक्ति" की कसौटी पर खरे उतरते हैं, आरोपी ने अपना भार उतार दिया होगा। इस प्रकार रखे गए साक्ष्य धारा [105](#) साक्ष्य अधिनियम के तहत भार से छुटकारा पाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते हैं लेकिन यह न्यायाधीश के मन में अपराध के एक या अन्य आवश्यक तत्वों के संबंध में उचित संदेह पैदा कर सकता है। उदाहरण के लिए, यह न्यायाधीश के मन में एक उचित संदेह पैदा कर सकता है कि क्या आरोपी के पास भारतीय दंड संहिता की धारा 299 में निर्धारित अपेक्षित आशय था। यदि न्यायाधीश को ऐसा उचित संदेह है, तो उसे अभियुक्त को बरी करना होगा, क्योंकि उस स्थिति में अभियोजन पक्ष अभियुक्त के अपराध को निर्णायक रूप से साबित करने में विफल रहा होगा। सामान्य भार के बीच कोई संघर्ष

नहीं है, जो हमेशा अभियोजन पक्ष पर रहता है और जो कभी नहीं बदलता है, और विशेष भाग जो अभियुक्त पर अपने पागलपन का बचाव करने के लिए रहता है।

हमारे सामने रखी गई पाठ्यपुस्तकें और बार में उद्धृत निर्णय एक ही निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। इंग्लैंड के हेल्सबरी के कानूनों में, तीसरा संस्करण, वॉल्यूम 10, पृष्ठ 288 में इस प्रकार कहा गया है:

"पागलपन स्थापित करने का दायित्व अभियुक्त पर है। उस पर सबूत का बोझ दिवानी कार्यवाही के पक्षकार से अधिक नहीं है।"

ग्लेनविल विलियम्स ने अपनी पुस्तक 'क्रिमिनल लॉ', द जनरल पार्ट, द्वितीय संस्करण में प्रासंगिक पहलू को सही परिप्रेक्ष्य में रखा है, जो पृष्ठ 516 पर इस प्रकार दिया गया है कि -

"जैसा कि पहले कहा गया है, यह पता लगाना कि आरोपी को अपने कृत्य की प्रकृति और गुणवत्ता के बारे में पता नहीं था, आंशिक रूप से, यह पता लगाने का एक और तरीका है कि वह अपराध के घटक बनने वाले किसी तथ्य से अनभिज्ञ था; और यदि अपराध ऐसा है जिसमें किसी इरादे या लापरवाही की आवश्यकता होती है, उसे इस पुस्तक में दिए गए दृष्टिकोण के अनुसार, दुषित मस्तिष्क से मुक्त

होना चाहिए। चूंकि दुषित मस्तिष्क को साबित करने भार अभियोजन पर होता है, जहां कही बचाव के सवाल या मस्तिष्क की बीमारी का सवाल उत्पन्न होता है, सिवाय इसके कि जहां तक कैदी को अपनी सुरक्षा के लिए अभियोजन पक्ष के सबूतों को बेअसर करने के लिए कहा जाता है। सबूत का कोई प्रेरक भार उस पर नहीं पड़ता है, और यदि जूरी अनिश्चित है कि क्या आपराधिक मनःस्थिति का आरोप लगाया गया है संदेह का लाभ कैदी को दिया जाना चाहिए, क्योंकि लॉर्ड रीडिंग के, शब्दों में एक अन्य संदर्भ में, "क्राउन तब कैदी के अपराध को उचित संदेह से परे जूरी को संतुष्ट करने के हमारे कानून द्वारा उस पर लगाए गए भार का निर्वहन करने में विफल रहा होगा।"

के.एम. नानावती बनाम महाराष्ट्र राज्य ¹ में इस न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धारा 80 में सन्निहित अपवाद के आधार पर बचाव के संदर्भ में सबूत के भार के सवाल पर विचार करना था, उस संदर्भ में कानून का सारांश इस प्रकार है:

"अभियोजन पक्ष पर पड़ने वाले सामान्य बोझ और साक्ष्य अधिनियम की धारा 105 के तहत आरोपी पर लगाए गए

विशेष बोझ के बीच कथित संघर्ष वास्तविक से अधिक काल्पनिक है। वास्तव में, कोई संघर्ष नहीं है। तीन अलग-अलग स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं : (1) एक कानून किसी अपराध के सभी या कुछ तत्वों को साबित करने का भार आरोपी पर डाल सकता है: (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 और 5 देखें)। (2) विशेष बोझ अपराध के तत्व नहीं छू सकता है, लेकिन केवल उक्त तत्व के प्रमाण की धारणा पर सुरक्षा दी गई है: (भारतीय दंड संहिता की धारा 77, 78 , 79 , 81 और 88 देखें)। (3) यह एक अपवाद से संबंधित हो सकता है, अपवाद को आकर्षित करने के लिए आवश्यक कई परिस्थितियों में से कुछ, यदि साबित हो जाती हैं, तो अपराध के सभी या कुछ अवयवों के प्रमाण को प्रभावित करती हैं: (भारतीय दंड संहिता की धारा 80 देखें) । तीसरे मामले में, यद्यपि अपने मामले को अपवाद के अंतर्गत लाने का भार अभियुक्त पर है, परंतु सिद्ध तथ्य उक्त भार को बरी नहीं कर सकते, लेकिन अपराध की तत्व के सबूत को प्रभावित कर सकता है।"

एक उदाहरण देते हुए, इस न्यायालय ने आगे कहा:

"वह साक्ष्य भारतीय दंड संहिता की धारा 80 के [सभी](#) तत्वों को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, लेकिन यह साबित कर सकता है कि गोलीबारी दुर्घटना या अनजाने में हुई थी, यानी, यह बिना किसी आशय या अपेक्षित मनःस्थिति के किया गया था, जो कि है अपराध का सार, धारा 300 , भारतीय दंड संहिता के अर्थ के भीतर, या किसी भी दर पर हत्या के अपराध के आवश्यक तत्वों पर उचित संदेह पैदा कर सकता है..... इस दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि अपराध के तत्व साबित करने का सामान्य भार, जब तक कि इसके विपरीत कोई विशिष्ट कानून न हो, हमेशा अभियोजन पक्ष पर होती है, लेकिन अपवादों के तहत आने वाली परिस्थितियों को साबित करने का भार अभियुक्त पर होता है।"

भारतीय दंड संहिता की धारा 80 में जो कहा गया है वह धारा 84 पर भी समान रूप से लागू होगा। कमला सिंह बनाम राज्य ⁱⁱ मामले में पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने यही सिद्धांत लागू किया था जब उन्मत्ता की दलील दी गयी थी। रामहितराम बनाम राज्य ⁱⁱⁱ मामले में नागपुर उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ की टिप्पणी अलग है क्योंकि उसने यह माना कि संदेह का लाभ जो विधि निर्दोषिता की उपधारणा पर

देती है वह केवल तभी उपलब्ध है जहां अभियोजन अभियुक्त को घटना से जोड़ने में सक्षम नहीं रहा हो और उसका अभियुक्त की मनःस्थिति के साथ कोई लेना-देना नहीं रहा हो। सम्मानपूर्वक हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकते। यदि यह दृष्टिकोण सही होता, तो न्यायालय असहाय हो जाती और किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए विधिक रूप से बाध्य हो जाती, भले ही उसके मन में वास्तविक और युक्तियुक्त संदेह होता कि जब अभियुक्त ने वह कृत्य किया जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया था तब उसका ऐसा कोई अपेक्षित आशय नहीं था। यह दृष्टिकोण नानावती^{iv} के मामले में अभिव्यक्ति दृष्टिकोण से भी असंगत है। ग्लेनविले विलियम्स के "क्रिमिनल लॉ", द जनरल पार्ट, 2 के संस्करण में देखा गया। पृष्ठ 517 पर एक स्कॉटिश मामला, एचएम एडवोकेट बनाम फ्रेज़र^v देखा गया जो सबूत के भार की इन दो श्रेणियों के बीच अंतर को इंगित करता है। वहाँ एक आदमी ने अपने बच्चे को सोते समय मार डाला; वह सपना देख रहा था कि वह एक जंगली जानवर से संघर्ष कर रहा है। विद्वान लेखक ने समस्या को इस प्रकार विस्तृत किया है:

"जब क्राउन ने यह साबित करा कि अभियुक्त ने अपने बच्चे को मार डाला तो साक्ष्य अवधारणा या तथ्यात्मक अवधारणा उत्पन्न हुई कि यह मार डालना एक हत्या है। यदि प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत न होता तो जूरी हत्या

का दोषारोपण कर सकती थी और उनका निर्णय अपील पर ही लिया जाता। अतः भ्रम साबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार अभियुक्त पर होता है। मान लो कि, सभी साक्ष्य रख दिये गये हों और जूरी को नहीं पता होता कि उनका क्या मामला बनाना है तो वे यह संदेह कर सकती है कि अभियुक्त अपने दोष को छुपाने के लिए कहानी गढ़ रहा है और फिर वह इसके बारे में युक्तियुक्त रूप से निश्चित भी नहीं हो सकती। इस दशा में, अभियुक्त दोषमुक्ति का हकदार हो जाता। अभियोजन को न केवल "एक्टस रीयस" किन्तु "मेन्स रीया" को भी युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया जाना होगा।"

उन्मत्ता की दलील के संदर्भ में सबूत के भार के सिद्धांत को निम्नलिखित प्रस्तावों में कहा जा सकता है: (1) अभियोजन पक्ष को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करना होगा कि अभियुक्त ने अपेक्षित आपराधिक मनःस्थिति के साथ अपराध किया था और विचारण के प्रारंभ से अंत तक यह साबित करने का भार हमेशा अभियोजन पर ही रहता है। (2) भारतीय दण्ड संहिता की धारा 84 में अधिकथित के संदर्भ में एक खण्डनीय उपधारणा है कि अपराध कारित करते समय अभियुक्त उन्मत्त नहीं था। अभियुक्त न्यायालय के समक्ष सभी प्रासंगिक साक्ष्य-मौखिक, दस्तावेजी या

परिस्थितिजन्य साक्ष्य रखकर इसका खंडन कर सकता है, लेकिन उस पर सबूत का भार सिविल कार्यवाहियों कार्यवाही से अधिक नहीं होगा। (3) भले ही अभियुक्त निर्णायक रूप से यह स्थापित करने में सक्षम नहीं था कि अपराध करने के समय वह उन्मत्त था, अभियुक्त या अभियोजन पक्ष द्वारा न्यायालय के समक्ष रखे गए साक्ष्य अभियुक्त कि अपराधिक मनःस्थिति सहित अपराध के एक या अधिक घटक के संबंध में न्यायालय के मन में युक्तियुक्त संदेह पैदा कर सकता है न्यायालय और इस मामले में न्यायालय इस आधार पर दोषमुक्त करने का हकदार होगा कि सबूत का सामान्य भार अभियोजन था जिसका निर्वाह नहीं किया गया।

अब हम मामले के गुण-दोष पर आते हैं साधारणतः संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उसकी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्यात्मक निष्कर्षों को स्वीकार करता है। लेकिन, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निर्णयों को पढ़ने के बाद, हम संतुष्ट हैं कि यह उक्त प्रथा से हटकर एक असाधारण मामला है। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष के साक्षियों के साक्ष्य को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उनका बयान अभियुक्त की सहायता करने के लिए बनाया गया था। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने दो भिन्न कारणों से उनके साक्ष्य को स्वीकार किया। राजू, जे. ने माना कि एक न्यायालय साक्ष्य अधिनियम

इस धारा 154 के अधीन किसी साक्षी को बुलाने वाले पक्षकार प्रश्न करने हेतु अनुज्ञात कर सकता है; इस निष्कर्ष के लिए उन्होंने निम्नलिखित दो कारण बताये हैं:

(1) एसएस का शब्दांकन। साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 और [154](#) इसे इंगित करती है, और (2) यदि उसे प्रतिकूल पक्ष द्वारा पुनः परीक्षण के चरण में प्रतिपरीक्षा की प्रकृति में प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है, तो प्रतिकूल पक्ष के पास उक्त प्रश्नों के दिए गए उत्तरों के संदर्भ में प्रतिपरीक्षा करने का कोई मौका नहीं होगा। हमारी राय में, दोनों में से कोई भी कारण तर्कसंगत नहीं है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 एक साक्षी की परीक्षा में केवल तीन चरण देता है, अर्थात्, मुख्य परीक्षा, प्रतिपरीक्षा और पुनः परीक्षा। यह किसी साक्षी से पूछताछ का एक नियमित क्रम है। इस प्रश्न की कोई प्रासंगिकता नहीं है जब साक्षी को बुलाने वाले पक्ष को धारा 154 के अधीन उससे प्रश्न पूछने की अनुमति दी जा सकती है। साक्ष्य अधिनियम की उक्त अधिनियम की धारा 154 धारा के प्रावधानों द्वारा शासित होती है जो न्यायालय को एक स्वविवेक की शक्ति प्रदान करती है कि वह साक्षी को बुलाने वाले व्यक्ति को उससे कोई भी प्रश्न पूछने की अनुमति दे सकती है जिसे विरोधी पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा में रखा जा सकता है। धारा 154 मुख्य परीक्षा के समापन से पहले या साक्षी की परीक्षा के किसी विशेष चरण तक न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग को

शब्दों में या आवश्यक निहितार्थ से सीमित नहीं करती है। इसका दायरा व्यापक है और परिस्थितियों की मांग के अनुसार अधिकार का प्रयोग करने का विवेक पूरी तरह से न्यायालय पर छोड़ दिया गया है। इस शक्ति को मुख्य परीक्षा के चरण तक ही सीमित रखना है यह व्यवहार में अप्रभावी है। एक चतुर साक्षी अपने मुख्य परीक्षण में ईमानदारी से वही करता है जो उसने पहले पुलिस या न्यायालय में कहा था, लेकिन प्रतिपरीक्षा में वह सूक्ष्म तरीके से बयान देता है जो कि मुख्य परीक्षण में उसने जो कहा था, उसके विपरीत होता है। यदि उसका इरादा स्पष्ट है, तो हम यह नहीं समझ पाते हैं कि न्यायालय उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान उसे साक्षी के रूप में बुलाने वाले व्यक्ति को उससे सवाल पूछने की अनुमति क्यों नहीं दे सकती है, जिसे विरोधी पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा में रखा जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 के एक विशेष चरण में किसी साक्षी से पूछताछ करने के लिए उस अनुभाग में उन शब्दों को पढ़ना होता है जो वहां नहीं हैं। हम उच्च न्यायालय से भी सहमत नहीं हो सकते हैं कि यदि साक्षी को बुलाने वाले पक्ष को प्रतिकूल पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा किए जाने के बाद साक्षी से ऐसे प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है, तो प्रतिकूल पक्ष को आगे प्रतिपरीक्षा करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। ऐसे प्रश्न पूछने से प्राप्त उत्तरों पर साक्षी। ऐसी स्थिति में न्यायालय निश्चित रूप से, अपने विवेक का प्रयोग करते हुए, विरोधी पक्ष को ऐसे प्रश्नों से प्राप्त उत्तरों पर

साक्षी से प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति देगी। इसलिए, न्यायालय उस व्यक्ति को, जो साक्षी को बुलाता है, उससे ऐसे प्रश्न पूछने की अनुमति दे सकता है, जिन्हें साक्षी की जांच के किसी भी चरण में प्रतिपरीक्षा में पूछा जा सकता है। बशर्ते कि अभियुक्त को उन उत्तरों पर प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाए जिन्हें मुख्य परीक्षा में जगह नहीं मिलती है। वर्तमान मामले में हुआ यह कि कुछ साक्षियों ने पूछताछ में पुलिस के सामने जो कुछ कहा था, उसे ईमानदारी से दोहराया, लेकिन प्रतिपरीक्षा में वे अभियुक्त के उन्मत्ता की कहानी के साथ सामने आए। अभियोजन पक्ष के वकील के अनुरोध पर न्यायालय ने उन्हें उक्त साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति दी। यह सुझाव नहीं दिया गया है कि अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत हुए वकील ने साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने के लिए एक और अवसर मांगा और न्यायालय ने इससे इनकार कर दिया। विद्वान न्यायाधीश द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 के स्पष्ट प्रावधानों से मतभेद में नहीं है। मेहता, जे. ने साक्षियों के साक्ष्य को इस आधार पर स्वीकार किया कि पुलिस के समक्ष उनके द्वारा दिए गए पहले के बयान न्यायालय में उनके साक्ष्य का खंडन नहीं करते थे, क्योंकि पहले के बयानों में अभियुक्तों की मानसिक स्थिति का उल्लेख करने में चूक गया था। विद्वान न्यायाधीश द्वारा दिया गया यह कारण भी युक्तियुक्त नहीं है। इस न्यायालय ने तहसीलदार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ^{vi} में

यह सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित परीक्षण निर्धारित किया कि किन परिस्थितियों में न्यायालय में सकारात्मक साक्ष्य का खंडन करने के लिए एक कथित चूक पर भरोसा किया जा सकता है:

"..... (3) हालांकि एक विशेष बयान स्पष्ट रूप से दर्ज नहीं किया गया है, एक बयान जिसे स्पष्ट रूप से दर्ज किए गए बयान का हिस्सा माना जा सकता है विरोधाभास के लिए, उसका उपयोग किया जा सकता है इसलिए नहीं कि यह तथाकथित रूप से एक चूक है बल्कि इसलिए क्योंकि इसे रिकॉर्ड किए गए बयान का हिस्सा माना जाता है; (4) ऐसी कल्पना केवल निम्नलिखित तीन मामलों में निर्माण द्वारा अनुमत है: (i) जब कथन में पाए गए पाठ या पाठ से एक पाठ आवश्यक रूप से निहित होता है ; (ii) बयान में सकारात्मक का एक नकारात्मक पहलू ;. और (iii) जब पुलिस के समक्ष दिया गया बयान और न्यायालय के समक्ष दिया गया बयान एक साथ नहीं टिक सकते।"

मोटे तौर पर वर्तमान मामले में स्थिति यह है कि साक्षियों ने पुलिस के समक्ष अपने बयानों में अभियुक्त का हत्या करने का स्पष्ट इरादा बताया, लेकिन न्यायालय के समक्ष उन्होंने कहा कि अभियुक्त उन्मत्ता से ग्रस्त था और इसलिए, उसने हत्या की। इन परिस्थितियों में पुलिस के समक्ष साक्षियों के पिछले बयानों में यह अनिवार्य रूप से निहित था कि जिस समय अभियुक्त ने हत्या की, वह उन्मत्ता नहीं था। इस दृष्टि से

पुलिस के समक्ष साक्षियों के पिछले बयानों का उपयोग न्यायालय में उनके बयान का खंडन करने के लिए किया जा सकता है। इसलिए, अभियोजन पक्ष के कुछ महत्वपूर्ण साक्षियों पर भरोसा करने का उच्च न्यायालय का निर्णय विधि की उक्त त्रुटियों से दूषित था। इसलिए, हम स्वयं संपूर्ण साक्ष्यों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ेंगे।

जब विधिक उन्मत्ता की दलील प्रस्तुत की जाती है, तो न्यायालय को इस बात पर विचार करना होता है कि क्या अपराध के समय अभियुक्त, मानसिक रूप से अस्वस्थ होने के कारण, कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ था या जो वह कर रहा था वह या तो ग़लत था या विधि के विरुद्ध था। अभियुक्त की मानसिक स्थिति का पता लगाने के लिए महत्वपूर्ण बिंदु वह समय है जब अपराध कारित किया गया था। क्या अभियुक्त ऐसी मानसिक स्थिति में था कि वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 84 का लाभ पाने का हकदार है।

पहला सवाल यह है कि, अपीलकर्ता के पास अपनी पत्नी को उस भयानक तरीके से मारने का क्या उद्देश्य है, जिसने उसके शरीर पर चाकू से 44 चोटें पहुंचाई? मृतक कलावती के पिता नटवरलाल आत्माराम से पीडब्लू 13 के रूप में पूछताछ की गई। उसने कहा कि उसकी बेटी की हत्या से लगभग 20 दिन पहले उसे अभियुक्त से एक पत्र मिला था जिसमें उसने अपनी बेटी को इस आधार पर ले जाने के लिए कहा था कि

वह उसे पसंद नहीं करता था, कि वह उस पत्र को लेकर भेराई गया और अभियुक्त के पिता छगनभाई को दिखाया और उनसे इस बारे में बातचीत की; छगनभाई ने उससे वह पत्र ले लिया और अभियुक्त को अपनी पत्नी को न त्यागने के लिए मनाने का वादा किया-, एक सप्ताह के बाद वह फिर से भेराई गया और अभियुक्त से पूछा कि वह मृतिका को क्यों पसंद नहीं करता है और अभियुक्त ने जवाब दिया कि वह उसे पसंद नहीं करता क्योंकि वह ठीक से काम नहीं कर रही थी; और उसके बाद वह अपने गांव वापस चला गया और किसी के माध्यम से संदेश भेजा कि वह जाएगा। हत्या चैत्र सुदी 1 से पहली रात हुई थी। प्रतिपरीक्षा में उसने स्वीकार किया कि उसने पुलिस को यह नहीं बताया कि उसने अभियुक्त के पिता को पत्र दिया था लेकिन उसने उप-निरीक्षक को बताया कि उसने पत्र उसे दिखाया था। पीडब्लू 7 के रूप में अभियुक्त के पिता छगनलाल ने निस्संदेह इनकार किया कि नटवरलाल ने उसे अभियुक्त द्वारा लिखा गया पत्र दिया था, लेकिन उसने स्वीकार किया कि घटना से 10 या 15 दिन पहले नटवरलाल उसकी बेटी को ले जाने के लिए उसके गांव आया था। नटवरलाल का यह साक्ष्य कि वह अभियुक्त के गांव गया था, पीडब्लू 7 के साक्ष्य से पुष्ट होता है। इसलिए, यह संभावना है कि अभियुक्त ने कलावती को ले जाने के लिए नटवरलाल को पत्र लिखा था और यह भी संभव है कि नटवरलाल ने पीडब्लू 7 को वह पत्र दिया हो। ताकि वह अपने

बेटे को समझाए कि वह अपनी पत्नी को न त्यागे। पीडब्लू 2 से 7 ने प्रतिपरीक्षा में कहा कि अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध थे, लेकिन, जैसा कि हम अपने फैसले में पश्चात् में संकेत देंगे, ये सभी साक्षी सत्र न्यायालय में मुकुर गए और उन्मत्तता के मामले का समर्थन करने का निरंतर प्रयास किया। इसके अलावा, उनके साक्ष्य यह खुलासा नहीं करते कि उन्हें अभियुक्त और मृतक के मध्य विद्यमान सौहार्दपूर्ण संबंध को नोटिस करने के क्या अवसर मिले। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने उनके साक्ष्यों पर उचित ही अविश्वास किया। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, जिन्होंने नटवरलाल को गवाह-कक्ष में देखा था, ने उसके साक्ष्य को स्वीकार किया। हम, उसके साक्ष्यों से गुजर चुके हैं विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की राय से अलग होने का कोई कारण नहीं दिखता। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त दस महीने से अहमदाबाद में रहने के बावजूद अपनी पत्नी को अपने साथ नहीं ले गया। हम नटवरलाल के साक्ष्य को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि अभियुक्त अपनी पत्नी को पसंद नहीं करता था और इसलिए चाहता था कि उसका ससुर उसे अपने घर ले जाए और कि उसके ससुर ने चैत्र सुदी से पहले ऐसा करने का वादा किया था।

अगला सवाल यह है कि अभियुक्त की मानसिक स्थिति का पिछला इतिहास क्या था? यहां भी, अभियोजन पक्ष के साक्षियों, पीडब्लू 2

से 7, ने सत्र न्यायालय में पहली बार गवाही दी कि घटना से 4 या 5 साल पहले अभियुक्त को उन्मत्तता के दौरे पड़ रहे थे। लेकिन इन सभी साक्षियों ने पुलिस के सामने कहा कि अभियुक्त ने अपनी पत्नी की हत्या की है, जिससे यह पता चलता है कि वह उस समय होश में था। इसके अलावा, उनके साक्ष्य मामले में स्थापित तथ्यों से असंगत हैं। इस अवधि के दौरान पीडब्लू 7 द्वारा यह स्वीकार किया गया कि अभियुक्त का किसी भी डॉक्टर द्वारा इलाज नहीं किया गया था। घटना से पहले वह करीब डेढ़ साल तक अहमदाबाद में मोनोग्राम मिल्स में कार्यरत था यद्यपि मृतका का पिता अभियुक्त के गांव से कुछ ही मील दूर एक गांव में रह रहा था और यद्यपि सगाई विवाह से 5 वर्ष पूर्व तय की गयी थी, वह यह नहीं जानता था कि अभियुक्त उन्मत्त था, यदि वह जानता कि अभियुक्त की मानसिक स्थिति ऐसी थी वह अपनी पुत्री का विवाह उससे नहीं करता। यह कल्पना करना असंभव है कि यदि वास्तव में ऐसा था तो उसे यह नहीं पता होता कि अभियुक्त उन्मत्त है, और विशेष रूप से तब जब अभियुक्त का मामला यह हो कि इसे गुप्त नहीं रखा गया था, बल्कि कई लोगों और कुछ साक्षियों को यह अच्छी तरह से पता था जो उसके लिए गवाही देने आए थे। घटना के डेढ़ महीने पहले छगनलाल इलाज के लिए अहमदाबाद गया था और उस दौरान अभियुक्त अपने पिता की अनुपस्थिति में उनकी दुकान संभालने के लिए अहमदाबाद से आया था। यह तथ्य कि उसे

अहमदाबाद से वापस बुलाया गया था, इसमें कोई विवाद नहीं था: लेकिन, जबकि नटवरलाल ने कहा कि अभियुक्त को छगनलाल की अनुपस्थिति में उसकी दुकान का प्रबंधन करने के लिए वापस बुलाया गया था, छगनलाल ने कहा कि उसे वापस बुलाया गया क्योंकि वह उन्मत्त हो रहा था। सबसे अच्छा सबूत उस रिश्तेदार का होगा जिसके घर में अभियुक्त अहमदाबाद में रह रहा था। लेकिन रिश्तेदार का परीक्षण नहीं किया गया। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त अहमदाबाद में मोनोग्राम मिल्स में कार्यरत था और उसे घटना से डेढ़ महीने पहले अपने पिता के पश्चात् कथित व्यवसाय को देखने के लिए अपने गांव आने के लिए कहा गया था, क्योंकि पिता चिकित्सीय ईलाज के लिए अहमदाबाद जा रहे थे। 27 जून, 1959 को सत्र न्यायालय में मुकदमा शुरू होने से पहले, अभियुक्त की ओर से एक आवेदन दायर किया गया था, जिसके समर्थन में अभियुक्त के पिता ने एक हलफनामा दायर किया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि, चूंकि अभियुक्त उन्मत्ता हो गया है, इसलिए उसे युक्तियुक्त चिकित्सा उपचार और निगरानी के लिए भेजा जाये। उस हलफनामे में यह नहीं बताया गया कि अभियुक्त को पिछले 4 या 5 वर्षों से उन्मत्तता के दौरे पड़ रहे थे और उस समय उसे ऐसा ही एक दौरा पड़ा था। यदि यह एक तथ्य था, तो कोई यह उम्मीद करेगा कि पिता अपने हलफनामे में उक्त तथ्य को प्रमुखता से पेश करेगा। इन तथ्यों से युक्तियुक्त निष्कर्ष निकलता है कि

अभियुक्त का यह मामला कि उसे समय-समय पर उन्मत्तता के दौरे पड़ते थे, बाद में विचार किया गया। इसलिए, साक्षियों, पीडब्लू 1 से 6 के सामान्य बयान कि उसे ऐसे दौरे पड़े थे, आवश्यक रूप से असत्य होंगे। इसलिए, हम मानते हैं कि अभियुक्त का उन्मत्तापन का कोई पिछला इतिहास नहीं था।

अब उस तारीख पर आते हैं जब घटना हुई थी, अभियुक्त के पिता पीडब्लू 7 ने कहा कि घटना से 2 या 3 दिन पहले अभियुक्त उन्मत्ता था। उसके साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि घटना वाले दिन वह और उसकी पत्नी अहमदाबाद गए थे और उसी शाम वापस लौट आए थे। यदि वास्तव में अभियुक्त को घटना से एक या दो दिन पहले उन्मत्तता का दौरा पड़ा था, तो क्या यह संभव है कि माता-पिता दोनों उसे छोड़ कर अहमदाबाद चले गए होंगे इस असंगति से उबरने के लिए पीडब्लू 7 ने कहा कि वह अपनी बेटी के लिए एक दूल्हा और अभियुक्त के लिए दवा भी लाने के लिए अहमदाबाद गया था। लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि उन्होंने किस डॉक्टर से सलाह ली और कहां से दवाएं खरीदीं या वास्तव में उन्होंने कोई दवा खरीदी भी या नहीं। यदि अभियुक्त को उन्मत्तता का दौरा पड़ा था तो क्या यह संभव है कि पत्नी उसके साथ एक ही कमरे में सोई होगी? इसलिए, हमें यह मानना चाहिए कि यह स्थापित नहीं किया गया था कि घटना से 2 या 3 दिन पहले अभियुक्त को उन्मत्तता का दौरा पड़ा था।

अब हम इस सबूत पर आते हैं कि घटना की रात क्या हुआ था। बेडरूम में क्या हुआ, यह अभियुक्त के अलावा किसी को नहीं पता। पीडब्लू 2 से 7 ने बताया कि 10 अप्रैल, 1959 को, चैत्र सुदी 1 के अनुसार, सुबह 3 से 4 बजे के बीच उन्होंने मृत कलावती की चीखें सुनीं जैसे कि उसे मारा जा रहा हो; कि वे सब कमरे में गए, परन्तु वह अन्दर से बन्द मिला; जब अभियुक्त से दरवाजा खोलने के लिए कहा गया, तो उसने कहा कि वह मुखी (पीडब्ल्यू 1) को बुलाने के बाद ही दरवाजा खोलेगा; मुखी के वहां आने के बाद अभियुक्त ने दरवाजा खोला और हाथ में खून से सना चाकू लेकर कमरे से बाहर निकला; कि अभियुक्त अप्रासंगिक बातें करने लगा और बोल रहा था "तुमने मेरी मां को क्यों मार डाला?" "तुमने मेरे पिता का घर क्यों जलाया?", कि इसके पश्चात् अभियुक्त नीचे बैठ गया और वहां एकत्रित लोगों पर उसने मिट्टी और कीचड़ फेंका; और वह बिना किसी कारण हंस रहा था। संक्षेप में, समस्त साक्षियों ने एक स्वर में सुझाव दिया कि अभियुक्त इस मतिभ्रम में था कि मृतका नें उसकी मां की हत्या की है और उसके पिता का घर जलाया है और इसलिए उस मनोदशा में यह नहीं जानते हुये कि वह क्या कर रहा है उसने उसे मार डाला। असल में उन्होंने पुलिस के सामने कहा कि अभियुक्त हाथ में खून से सना चाकू लेकर कमरे से बाहर आया और स्वीकार किया कि उसने अपनी पत्नी की हत्या कर दी है; लेकिन गवाह-खाने में उन्होंने कहा कि जब अभियुक्त

कमरे से बाहर आया तो वह पागलों की तरह व्यवहार कर रहा था और अपनी पत्नी की हत्या के लिए काल्पनिक कारण बता रहा था। बयान में दिए गए बयान वास्तव में पुलिस के समक्ष दिए गए पहले के बयानों से असंगत हैं और इसलिए, वे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के अर्थ में विरोधाभासी हैं। हम इन साक्षियों के साक्ष्य पर कोई भरोसा नहीं कर सकते: यह अभियुक्तों की मदद करने के लिए एक स्पष्ट विकास है।

मुकदमे के बाद की घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्मत्तता की दलील देर से सोचा गया और झूठा मामला था। अभियुक्त के कमरे से बाहर आने के बाद उसे चोरा में ले जाया गया और चोरा के एक कमरे में बंद कर दिया गया। पीडब्लू 16, पुलिस उप-निरीक्षक, सुबह लगभग 9.30 बजे भेराई पहुंचे, उसने अभियुक्त से पूछताछ की, उसका बयान दर्ज किया और लगभग 10.30 बजे उसे गिरफ्तार कर लिया। उसके अनुसार, चूंकि अभियुक्त कबूल करने को तैयार था, इसलिए उसे न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेज दिया गया। इस साक्षी ने अभियुक्त से मिलने के समय उसकी स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया:

"जब मैं चोरा में गया तो उसने मुझे सलाम किया था और वह पूरी तरह से स्वस्थ था। उसमें उन्मत्तता का कोई लक्षण नहीं था और वह उन्मत्त आदमी की तरह व्यवहार नहीं कर रहा था। वह गाली नहीं दे रहा था। उसने मेरे सवालों का जवाब समझकर दिया था और प्रासंगिक उत्तर दे रहा

था। और इसलिए मैंने उसे अपराध स्वीकार करने के लिए मजिस्ट्रेट के पास भेजा था क्योंकि वह अपराध स्वीकार करना चाहता था।

इस सबूत पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, खासकर जब यह अभियुक्त के बाद के आचरण के अनुरूप हो। लेकिन पीडब्लू 9, जिसने अभियुक्त के शरीर और उसके कपड़ों की हालत दर्ज करते हुए पंचनामा प्रदर्श-19 प्रमाणित किया, नें बताया कि अभियुक्त बड़बड़ा रहा था और हंस रहा था। लेकिन पंचनामे में उसकी स्थिति का कोई जिक्र नहीं किया गया। इसके बाद, अभियुक्त को उसकी चोटों की जांच और इलाज के लिए मेडिकल ऑफिसर, मेटर के पास भेजा गया। रात 9.30 बजे डॉक्टर ने अभियुक्त की जांच की और अपना साक्ष्य पीडब्लू 11 के रूप में दिया। उसने अपने द्वारा जारी प्रमाण पत्र प्रदर्श-23 को साबित किया, उस प्रमाणपत्र में अभियुक्त की मानसिक स्थिति के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था। इस साक्षी से प्रतिपरीक्षा में अभियुक्त की मानसिक स्थिति के बारे में एक भी सवाल नहीं पूछा गया। उसी दिन, अभियुक्त को अपराध स्वीकारोक्ति के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी के पास भेजा गया। अगले दिन उसे उक्त मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया, जिसने उससे आवश्यक प्रश्न पूछे और उसे चेतावनी दी कि मुकदमे में उसके कबूलनामे का इस्तेमाल उसके खिलाफ किया जाएगा। अभियुक्त को विचार करने के लिए समय दिया गया और 13 अप्रैल, 1959 को मजिस्ट्रेट के

सामने पेश किया गया। उस तारीख को उसने कुबूलनामा देने से इनकार कर दिया। मजिस्ट्रेट के समक्ष उसका आचरण, जैसा कि प्रदर्श-31 में दर्ज किया गया है। उपदर्शित करता है कि वह उससे पूछे गए प्रश्नों की सराहना करने और अंततः वह स्वीकारोक्ति न करने का मन बनाने के लिए उपयुक्त स्थिति में था जो उसने पहले करने की पेशकश की थी। दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XVIII के अधीन जांच कार्यवाही के दौरान अभियुक्त की ओर से ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया कि वह उन्मत्ता है। 27 जून, 1959 को पहली बार सेशन कोर्ट में मुकदमा शुरू होने पर अभियुक्त की ओर से एक अर्जी दाखिल की गई और आरोप लगाया गया कि वह उन्मत्तता के दौर से पीड़ित है। 29 जून 1959 को सेशन जज ने अभियुक्त को निगरानी के लिए सिविल सर्जन खैरा के पास भेज दिया। उसकी रिपोर्ट प्राप्त होने पर, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने 13 जुलाई, 1959 को अपने आदेश द्वारा अभियुक्त को उन्मत्ता और अपना बचाव करने में असमर्थ पाया। 28 अगस्त, 1959 को न्यायालय ने अभियुक्त को 18 सितंबर, 1959 को या उससे पहले अपनी रिपोर्ट भेजने के निर्देश के साथ निगरानी में रखने के लिए, मानसिक अस्पताल, बड़ौदा के अधीक्षक के पास भेजने का निर्देश दिया। उक्त अधीक्षक ने 27 अगस्त 1960 को इस आशय की रिपोर्ट भेजी कि अभियुक्त न्यायालय की कार्यवाही को समझने और न्यायालय में अपना बचाव करने में सक्षम है। पूछताछ पर

न्यायालय ने माना कि अभियुक्त मामले की कार्यवाही को समझ सकता है और अपना बचाव करने में सक्षम है। मुकदमे की शुरुआत में, अभियुक्त के वकील ने कहा कि अभियुक्त कार्यवाही को समझ सकता है। सेशन जज के समक्ष कार्यवाही ने केवल यह दिखाया कि उनके सामने मामला शुरू होने के कुछ समय बाद तक अभियुक्त उन्मत्ता था। लेकिन यह तथ्य यह स्थापित नहीं करेगा कि अभियुक्त को घटना से 4 या 5 साल पहले से उन्मत्तता के दौरे पड़ रहे थे और जिस समय उसने अपनी पत्नी की हत्या की, उस समय उसे उन्मत्तता का ऐसा दौरा पड़ा था कि उसे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 84 का लाभ दिया जा सके। अपनी पत्नी की हत्या करने से लेकर सत्र की कार्यवाही शुरू होने तक अभियुक्त का संपूर्ण आचरण इस तथ्य से असंगत है कि जब उसने अपनी पत्नी की हत्या की तो उसे उन्मत्तता का दौरा पड़ा था।

ऐसा कहा जाता है कि कमरे की स्थिति इस बात का समर्थन करती है कि अभियुक्त को नहीं पता था कि वह क्या कर रहा है। सवाल है कि एक निहत्थी और असहाय महिला को मारने के लिए अभियुक्त को इतने चाकू क्यों मारने चाहिए थे? यह कहा गया है कि इससे पता चलता है कि अभियुक्त किसी मतिभ्रम के तहत यह कार्य कर रहा था। दूसरी ओर कमरे में हथियारों का होना, अंदर से दरवाजा बंद होना, मुखी के आने तक कमरे से बाहर निकलने में उसकी अनिच्छा, भले ही यह बात सच हो, यह

संकेत देगा कि यह एक पूर्व-निर्धारित हत्या थी और वह जानता था कि अगर वह मुखी के आने से पहले कमरे से बाहर आया तो उसके साथ दुर्व्यवहार किया जा सकता है। कई स्वस्थ व्यक्ति अपने पीड़ितों को आवश्यकता से अधिक वार करते हैं। दिए गए प्रहारों की संख्या शायद उसकी प्रतिशोधी मनोदशा या यह देखने के उसके दृढ़ संकल्प को दर्शाती है कि पीड़ित के बचने का कोई अवसर नहीं है। जब कोई हत्या करता है तो वह अपने आघातों को नहीं गिनता। इसलिए हमें कमरे में मिले सामान से उन्मत्तता का कोई संकेत नहीं दिख रहा है, वहीं दूसरी ओर वे योजनाबद्ध हत्या के मामले का समर्थन करते हैं।

संक्षेप में: अभियुक्त अपनी पत्नी को पसंद नहीं करता था; हालाँकि वह अहमदाबाद में कार्यरत था और लगभग 10 महीने तक वहाँ रहा, वह अपनी पत्नी को अपने साथ नहीं ले गया; उसने अपने ससुर को इस आशय का पत्र लिखा कि अभियुक्त उसे पसंद नहीं करता और वह उसे अपने घर ले जाए। ससुर ने चैत्र सुदी 1 को आने का वचन दिया; अभियुक्त को स्पष्ट रूप से उम्मीद थी कि वह 9 अप्रैल 1959 को आएगा और तब तक उसने अपने घर में अपनी पत्नी की उपस्थिति को सहन किया; चूंकि उसके ससुर 9 अप्रैल, 1959 को या उससे पहले नहीं आए, इसलिए गुस्से या हताशा में अभियुक्त ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी। यह स्थापित नहीं हुआ है कि वह उन्मत्त था; न ही सबूत हमारे मन में

यह युक्तियुक्त संदेह पैदा करने के लिए भी पर्याप्त है कि यह कृत्य तब किया गया होगा जब अभियुक्त उन्मत्तता की स्थिति में था। इसलिए हम अलग-अलग कारणों से, हम उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत हैं और अपील को खारिज करते हैं।

अपील खारिज की गई।

i (1962) पुरक 1 एस.सी.आर. 567, 597, 598

ii ए.आई.आर 1955 पटना 209

iii ए.आई.आर 1956 नागपुर 187

iv 1962 पुरक 1 एस.सी.आर. 567

v 1878 4 कुपर 70

vi 1959 पुरक 2 एस.सी.आर. 875, 903

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी आशीष कुमार कुमावत (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।